तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

(ब्रह्मा के राज उपवन में दोनों ओर देवगण अर्धचंद्राकार बैठे हैं। बीच में बूढ़े ब्रह्मा कमल-कोष में स्थित हैं।)

इंद्र— भाग्य के विधाता देव, दैत्य, मनुजादिक के
पितृदेव! बोलो यह दासता, घृणाभरी
ढोते फिरेंगे क्या सुरवृंद चिरकाल को ही
स्वर्ग के सुवर्ण-मणि-शिखरों से भ्रष्ट हो।
दिन-मास-वर्ष की अवधि सा प्रमाण-काल
बोलो हे पिता! क्या मानवों से सुख-स्वप्न तुल्य
अमरों का भाग्य भी रचा था वारि-बिंदु से।
पिता होकर भी निज पुत्रों की पराजय का
बज्र-लेखनी से लिखा तुमने यह कुलेख था।
अपना लिखा भी मेटने में असमर्थ आप
तो क्या तुम भी हो क्रीत दास किसी और के,
बैठे पद्म-गर्भ में मधुप से एक आसन से
शासन चलाते सदा जिसका कठोरतम?
संभव कभी है, पुत्र फिरे असहाय और
देखे पिता अन्यथा समर्थ उच्च पद से?
तोड़ डालो हाय कंज-कोष यह बूढ़े पिता!
कूद पड़ो जलते रवि-पिंड-से विरोध को,
मृत्यु या स्वतंत्रता ही अमरों की भोग्य है।
मौन! हाय! बोलो हे हज़ार बार प्यारे पिता!
यह अमरत्व चिर-यंत्रणा का पाश था,
विस्मृति, विराम, परिवर्तन से हीन सदा

कंटक-किरीट सा धँसा जो मग्न भाल-मध्य
रक्त-बिंदुओं की रहे पुष्प-वृष्टि करता।

वृहस्पति— धैर्य धरो, देवपति! दैन्य दिखाना है मृत्यु
होते पितामह के कमी क्या तुम्हें।

इंद्र— धैर्य धरूँ!
जीता हूँ अभागा मैं सुरेंद्र-पद खोकर आज
पुत्र-धन-दारा-यश-वैभव-विहीन, दीन
धैर्य इतना तो नहीं वृद्धा, जड़ भूमि में
धैर्य-विख्याता जो, गिरो, हे भीम नीलाकाश!
वज्र से कड़ककर, दिगंत-गज-दंत पर
फट जा ओ स्वर्ग-वसुमते! रिपु-स्पर्श से,
स्थिर हैं ये नीच लोकपाल, हाय! त्रिभुवन में
तृण भी न कँपता है कैसी दु:संधि यह!
भूले पंचतत्व क्या सुमेरु-भंजी वज्र-घोष!
मनोवेग-धावी, क्रुद्ध विद्युत-कटाक्ष वह
भूल गयी भूमि! स्वर्ग भूला निज नाथ को!
पामरो! न भूलो, ब्रह्माण्ड के करे जो खंड
शक्ति अभी शेष है सुरेंद्र-भुजदंड में
जिससे बली भी डरता है स्वर्गलोक में।
आह, हँसते हो, है प्रलाप यह अशक्तता का!
असह सुरत्व का है तीव्र अपमान यह!

(मूर्छित हो जाता है)

वृहस्पति— आत्मा के देह से बिछुड़ने से कष्ट अधिक
नष्ट होता स्वार्जित विभव देख होता है
साधारण जन को, कथा क्या सम्राट् की!
जिसका भृकुटि-भंग प्रलय-कृशानु-सा था
हुंकृति जिसकी थी शंभु-तांडव के सम-सी

सृष्टि के विनाश-हेतु, जिसका निदेश क्रुद्ध
श्यामल घटायें जोहती थीं खड़ी दानवी-सी
टूट पड़ने को बिजली-सी नील नभ से,
जिसकी परिक्रमा थे करते कलापी-तुल्य
सर्व लोक, लोकपाल, हास देख जिसका
सित परिजात स्वर्गंगा में बिकसते
हीरक-मणियों-से उर्वशी के गौर अंगों पर,
बजते मृदंग के शची के रंग-मंदिर में,
नर्तित उमंग में कुरंग-विश्व डोलता,
मुग्धा देव-स्त्रियों की सरोज-दाम श्याम वेणी
मधुप-श्रेणी-सी उड़ी चूम लेती मुड़कर
युगल सरोज अपने ही मानसर के।
हाय! वही शूरों का शृंगार, रत्न रसिकों का
वीरों का विलास, वज्रहस्त देवराज वह
आज पाशवद्ध मृगराज-सा पड़ा है पंगु
स्यार करते हैं सुख-भोग स्वर्ग-भूमि का।

वरुण— देखो जाग रहे वे महा सुमेरु-शृंग जैसे
खोले शून्य नयन कराल काल-पथ में

ब्रह्मा— व्याकुल बने क्यों! इंद्र! सृष्टि का नियम ध्रुव
पतन के अंत में उत्थान, उत्थान के
अंत में पतन-क्रम चक्र-सा है चलता,
सुख-दुख दोनों धूप-छाँह सी हैं नेमि की।
कौन ऐसी माता है प्रसव-पीड़ा झेले बिना
देखा मुख जिसने अभीष्ट पुत्र-रत्न का!
स्वर्ग का तो पथ है सदा से दुर्गम्य, दीर्घ,
कष्ट-प्राप्य, शीघ्र-भ्रंशशील, सुनो, देवराज!
बार-बार दिति के उदर में स्वबंधुओं को

तुमने किया था चूर्ण तीव्र कशाघात से
जैसे धरती की गर्भस्थ शस्य-मालिका को
भून देती दामिनी गृही के उगते हुए
आशा-रूपी अंकुर के साथ एक क्षण में।
पाप भ्रूण-हत्या का प्रचंड वही, पुरहूत!
यह तो था स्वर्ग, विष्णु-लोक के भी अंत से
खींचकर गिराता तुम्हें भ्रष्ट नक्षत्र-सा

चंद्रमा— राजनीति में तो, देव! पुण्य-पाप-निर्णय की
निज लाभ-हानि की तुला ही मापदंड है।
शत्रु की पराजय-सा पुण्य और होगा कौन!
पाप है न कोई पराधीनता से बढ़कर।
धर्म जटाजूटधारी ऋषियों के आगे भले
नियम अटल एक हो अनंत न्याय का
किंतु जो स्वहस्त में लिये हैं भाग्य राष्ट्रों के,
चतुर, नीतिज्ञ, लोक-अनुभवी, प्रवीण वे
शिशु-की-सी बात-सा महान निर्णयों के बीच
धर्म-वाक्य सुनते सहास उठा मुख को।
कूटनीटि शुक्र की फली है, बलि का न तप,
कूटनीति से ही हम स्वर्ग फिरा पायेंगे।

वृहस्पति— चंद्रमा कलंकी हैं सदा के, हे हिरण्यगर्भ!
आपका ही एक है सहारा देवजाति को।
पुत्र अनुचित भी किये को नत देख पिता
क्षमा-दान देकर सत्य-मार्ग पर है डालता।
आपसे सहस्रयोनि बने थे सहस्राक्ष,
आप ही उबारेंगे सुरों को आज पाप से।

ब्रह्मा— शेषफण-शायी हरि के ही मेघवर्ण बाहु
मुक्ति में समर्थ नहीं युक्ति अब अन्य है।

आओ चलें क्षीरधि की दुग्धसमा नगरी में
अगम, अलीक, गुणहीन व्योम-पथ से,
लेटे हैं जहाँ पर पारब्रह्म विष्णु तीर्यगात
कुंडल किरीट-धरे, माला गले कौस्तुभ की
सेवित सरोज-पद क्षीरसुता-कर से,
विद्युत-प्रभा ज्यों रँगती हो नील-नभोप्रांत
क्षण-क्षण कादंबिनी-कारा से निकलती।
कोटि रवि-शशि, कोटि काम, कोटि ब्रह्मा-रुद्र
कोटि ब्रह्मांड, कोटि काल उस हरि के
एक-एक रोम-रंध्र में हैं रमे रेणु-से,
मानो अणुओं का हो निवास महाकाश में।
आओ चलें वहीं, अपना भी चक्रपाणि वह
होगा ही सहाय जो सहाय असहाय का

(प्रस्थान, पटाक्षेप)